

बजट 2024: मेहनतकशों से ज्यादा मालिकों की चिंता

स्वदेश कुमार सिन्हा

नब्बे के दशक में कांग्रेस की नरसिम्हा राव सरकार द्वारा नयी आर्थिक नीति— जिसे नव उदारवादी नीति कहा जाता है और जिस पर पक्ष-विपक्ष सभी की आमतौर पर सहमति थी— लागू किए जाने के बाद नेहरूवादी नियोजित अर्थव्यवस्था की जगह सब कुछ बाज़ार के हवाले कर दिया गया। स्वास्थ्य-शिक्षा जैसी कल्याणकारी योजनाओं से सरकार ने हाथ खींच लिए।

वास्तव में यह एक वैश्विक परिदृश्य था। दुनिया भर की सरकारें ऐसा कर रही थीं। भाजपा तो शुरू से मुक्त बाज़ार—मुक्त अर्थव्यवस्था समर्थक पार्टी रही है। नब्बे के बाद से लगातार केन्द्रीय बजट में इन नीतियों की अभिव्यक्ति स्पष्ट दिखाई पड़ती है। स्वास्थ्य-शिक्षा आदि के मद पर हर बजट में लगातार खर्च कम होता गया तथा कॉरपोरेट को दी जाने वाली छूट लगातार बढ़ती गई। वैश्वीकरण की इन नीतियों ने दुनिया भर में एक ओर तो आम जनता का कंगालीकरण बढ़ाया, तो दूसरी ओर भारत सहित पूरी दुनिया में अरबपतियों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई, लेकिन इसके दुष्परिणाम बहुत जल्दी सामने आए। यूरोप-अमेरिका सहित विकसित दुनिया से लेकर भारत सहित तीसरी दुनिया के देशों में भी बेरोज़गारी-बढ़हाली बढ़ने से जन असंतोष तेज़ी से बढ़ा। 1930 की भयानक महामंदी की छाया एक बार फिर दुनिया पर पड़ने लगी है। ये चीज़ें कोरोना महामारी के दौरान अपने उत्कर्ष पर पहुँच गईं तथा पूँजीवादी देशों के अर्थशास्त्री तक कहने लगे कि, 'पूँजीवाद को बचाना है तो सब कुछ बाज़ार के हवाले नहीं किया जा सकता।' थामस पिकेटी तथा अमर्त्य सेन जैसे अर्थशास्त्रियों का कहना था कि जनता को रोज़गार भले न दिया जाए, लेकिन ग़रीबों के हाथ कुछ पैसा दिया जाए, जिससे कि आर्थिक मंदी दूर हो और कॉरपोरेट का माल बिकता रहे तथा किसी तरह की सामाजिक क्रांति से बचा जा सके।' लेकिन स्थायी रोज़गार की बात कोई नहीं कर रहा था, क्योंकि नव उदारवादी नीतियाँ रोज़गारविहीन विकास की अवधारणा देती हैं। ग़रीबों के खातों में कुछ पैसा डालना, उन्हें मुफ़्त अनाज देने की अवधारणा इन्हीं नीतियों से पैदा हुई। एनडीए तथा इंडिया गठबंधन की ज्यादातर पार्टियों में इन नीतियों पर आम सहमति है। आम बजट का भी इन्हीं नीतियों की रोशनी में मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

इसके बावज़ूद करीब दस वर्ष के भाजपा शासन के दौरान यह बजट किस प्रकार से भिन्न है? क्या इसमें सरकार की आर्थिक नीतियों में कुछ बदलाव देखने में आता है? हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यह बजट भाजपा का न होकर एनडीए का है तथा बिहार और आंध्र प्रदेश के दो दलों की बैसाखी पर यह सरकार टिकी हुई है, लेकिन यह सोचना पूरी तरह से सही नहीं है कि नीतीश-नायडू की बैसाखी पर टिकी होने से यह कमज़ोर सरकार है, जहाँ तक सत्तारूढ़ वर्ग की अंदरूनी तिकड़मों और सौदेबाजी का सवाल है, निश्चय ही इसके कुछ मुख्य पृष्ठपोषक क्रोनी कैपिटलिस्ट कॉरपोरेट घरानों को थोड़ा पीछे हटकर कुछ क्षेत्रीय शक्तियों के साथ समझौता करना पड़ेगा, जिन्हें एक दशक से

अंबानी, अडानी और टाटा जैसे गुजराती एकाधिकारवादी कॉर्पोरेट के लिए जगह छोड़नी पड़ी थी। उदाहरण के लिए 2011 के शेयर बाजार के बूम में अहम रहे इंप्रॉ क्षेत्र के वे हैदराबादी कॉर्पोरेट फ़िर से अपने लिए जगह बनाने का पूरा प्रयास करेंगे, जिन्हें एक समय 'आंध्राप्रेन्यर्स' कहा जाता था। वर्तमान बजट में इस फैक्टर का भी बड़ा प्रभाव देखने में आता है तथा भविष्य में भी सरकार की आर्थिक नीतियों पर यह प्रभाव दृष्टिगोचर होगा।

इस बजट की महत्वपूर्ण बात यह है कि सरकार ने आखिर यह मान लिया कि देश में बेरोज़गारी एक बड़ी समस्या है। 23 जुलाई, 2024 को वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण जब संसद में अपना बजट भाषण पेश कर रही थीं, तब अप्रत्याशित तौर पर उन्होंने 'रोज़गार' शब्द का सात बार प्रयोग किया। बजट से पूर्व जारी किए गए आर्थिक सर्वेक्षण में बेरोज़गारी की समस्या को हल करने के लिए प्रतिवर्ष 78.5 लाख नौकरी अगले पाँच साल तक देने का प्रस्ताव रखा गया था। मोदी 1.0 विकास, 15 लाख रुपये और सबके लिए रोजगार का वादा करते हुए शुरू हुआ था। मोदी 2.0 प्रतिवर्ष एक करोड़ रोजगार देने के वायदे के साथ आया। मोदी 3.0 इसमें से किसी भी वायदे को दुहराने की बजाय इसे न्यूनतम स्तर पर हल करने के वायदे के साथ सामने आया है। यह बजट भाषण भारत में भीषण बेरोज़गारी का स्वीकरण है, जिसका निदान इस बजट में फिलहाल नहीं दिख रहा है। इस संदर्भ में जो वायदे किये गये हैं, उसमें कुछ ऐसी विसंगतियाँ हैं, जिनका सीधा फ़ायदा युवा मेहनतकशों के हिस्से में आने की बजाय बड़ी कंपनियों के हिस्से में जाएगा।

सरकार रोजगार देने के प्रावधानों में मेहनतकशों को लेकर चिंतित होने की बजाय ज्यादा चिंता मालिकों की करती दिख रही है। इस संदर्भ में एक योजना ऐसी है, जिसमें युवाओं के खाते में सीधे 15 हजार रुपये की मदद तीन किस्तों में दी जाएगी। यह उन नौकरियों में दी जाएगी, जिसमें साल का एक लाख से कम भुगतान किया जा रहा हो। नौकरी करने वाले युवा को जो पहली बार इपीएफओ में नामांकित हो रहे हैं, उन्हें उसका फ़ायदा होगा। अनुमान के आधार पर ऐसे युवाओं की संख्या 2 करोड़ 10 लाख मानी गई है। मैनुफैक्चरिंग सेक्टर में काम करने वाले युवाओं को भी प्रोत्साहन राशि देने का वादा किया गया है, लेकिन यह कितना होगा स्पष्ट नहीं है। एक दूसरी योजना के बारे में भी बात की गई है, जिसमें कार्यरत कर्मचारियों के प्रोविडेंट फंड में मालिकों की हिस्सेदारी में से प्रति महीने 3000 हजार रुपये 2 साल तक सरकार वापस करेगी। ऐसी ही एक और योजना की घोषणा इस बजट भाषण में की गई।

सरकार ने दावा किया है कि पाँच साल में 1 करोड़ युवाओं को कौशलयुक्त बनाया जाएगा। इनमें से 25 हजार छात्रों को ऋण और छात्रवृत्ति उपलब्ध कराई जाएगी। इसी योजना में देश की टॉप 500 कंपनियों में 1 करोड़ युवाओं को प्रशिक्षु के तौर पर भर्ती किया जाएगा। प्रशिक्षुओं की यह संख्या प्रतिवर्ष 20 लाख बनती है। यहाँ सरकार ने इन प्रशिक्षुओं को 5000 हजार प्रति महीने 'अलाउंस' देने की घोषणा की है। प्रशिक्षण पर रखने वाली कंपनियाँ प्रशिक्षुओं पर अपने कॉर्पोरेट सोशल रिस्पांस्बिलिटी का 10 प्रतिशत हिस्सा खर्च करेगी और उनके प्रशिक्षण का खर्च वहन करेगी। भर्ती के दौरान सरकार 6000 हजार रुपये देगी।

भारतीय श्रम कानूनों में, जिसमें फैक्टरी प्रबंधन और नियोजन भी शामिल है, रोजगार की विविध श्रेणियों को वर्गीकृत किया गया है। इस संदर्भ में कर्मचारियों को देय भुगतान की श्रेणियाँ भी तय हैं। प्रशिक्षुओं के संदर्भ में बाकायदा एक कानूनी संरचना है, जिसमें 'अलाउंस' जैसे शब्द का न तो प्रयोग है और न ही मालिकों की ओर से सीएसआर से इसका भुगतान करने का प्रावधान है। 'द अपैरेंटिस एक्ट, 1961' जो अस्तित्व में आने के बाद से 1973, 1986, 1997, 2007 और 2014 में संशोधित किया

गया है, में साफ़ तौर पर प्रशिक्षण के दौरान मालिक को 'स्टाईपेंड' देने का प्रावधान है। यह एक तरह का वज़ीफ़ा, अनुदान है जो उसके आवश्यक जीविका के लिए तय मानदंडों से कम नहीं होना चाहिए। यह अधिनियम तय करता है कि प्रशिक्षु का भुगतान उसके उत्पादन और मुनाफ़े के आधार पर नहीं होगा।

इस अधिनियम पर फैक्टरी एक्ट 1948 के कुछ पक्ष जैसे, प्रशिक्षु के स्वास्थ्य, जीवन और काम की अवस्थितियाँ लागू हैं। साथ ही प्रशिक्षु के घायल होने पर मालिक को जिम्मेवारी लेनी होगी और भुगतान करना होगा। प्रशिक्षण के संदर्भ में इस एक्ट में मालिकों के लिए कुल कार्यशक्ति के एक हिस्से के तौर पर प्रतिवर्ष प्रशिक्षु रखने और प्रशिक्षण पूरा होने पर सरकार को इसकी जानकारी देना ज़रूरी माना गया है। यह प्रावधान सिर्फ़ टॉप 500 कंपनियों के लिए नहीं, अपितु सभी फैक्टरी एक्ट के तहत आने वाली कंपनियों के लिए है।

सरकार ने किस आधार पर टॉप 500 कंपनियों का चुनाव किया है, यह स्पष्ट नहीं है। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि भारत की टॉप 500 कंपनियों ने अपने विकास दर में अमेरिकी कंपनियों को भी पीछे छोड़ दिया है। यह सिर्फ़ श्रम अवदानों के बल पर संभव नहीं है। इसमें निश्चित ही अधिग्रहण और शेयर बाज़ार से हासिल पूँजीकरण एक बड़ी भूमिका निभा रहा है। इस कथित विकास को लेकर पिछले कुछ सालों में राहुल गांधी से लेकर कई विशेषज्ञों ने गंभीर सवाल खड़े किए हैं।

मोदी सरकार के पिछले दो कार्यकाल इस संदर्भ में कई तरह की समस्याएँ पैदा करते रहे हैं। एक बड़ी समस्या आँकड़ों को लेकर है। मोदी सरकार के दौरान या तो आँकड़े आ नहीं रहे हैं और यदि आ रहे हैं, तब उन्हें संदर्भित करना और समझना भी एक दुरूह काम हो गया है। लंबे समय बाद इस जुलाई के शुरुआत में 'सांख्यिकी और योजना कार्यान्वयन मंत्रालय' की ओर से 2021-22 और 2022-23 का वार्षिक सर्वेक्षण जारी किया गया, तब यह साफ़ हो गया कि मोदी 3.0 सरकार बेरोज़गारी और छोटे उद्यम की बर्बादी को एक सीमा तक स्वीकार करने के लिए तैयार हो चुकी है।

इस सर्वेक्षण में यह स्वीकरण दिखता है कि नोटबंदी और कोविड-19 की महामारी के दौरान किए गए लॉकडाउन ने लाखों उद्यमों को बर्बाद कर दिया और बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी पैदा की। इसके बाद आर्थिक सर्वेक्षण की वर्तमान रिपोर्ट सामने आती है, जिसमें प्रतिवर्ष 78.5 लाख रोज़गार पांच साल में सृजन करने की ज़रूरत को रखा गया है। इन दोनों के बीच अचानक ही रिजर्व बैंक ने अपनी रिपोर्ट में लगभग 4 करोड़ लोगों के रोज़गार का आँकड़ा सामने रखा है। जबकि नौकरियों के लिए आवेदन करने वालों की संख्या, गाँव में मनरेगा के तहत काम माँगने वालों और गाँव से शहर की ओर जा रहे मजदूरों की संख्या से बेरोज़गारी के संकट का अनुमान लगाना इतना कठिन नहीं रह गया है।

रोज़गार का संकट सिर्फ़ यह नहीं है कि भारत के कुल श्रम अवदान में कितने लोग इससे वंचित रह जा रहे हैं। यह एक ऐसा भ्रामक आँकड़ा है, जिसमें नियमित-अनियमित काम का बँटवारा ही ख़त्म हो जाता है। साल में महज़ 100 दिन के काम का वादा भी जब सरकार पूरा न करा पा रही हो, उसे सिर्फ़ काम के चंद घंटों के आधार पर श्रम अवदान मान लेने और भुगतान पूरा हो जाने का अनुमान कर लेने से भारत की बेरोज़गारी की समस्या हल नहीं होने वाली है।

नोटबंदी, जीएसटी, कोरोना महामारी के दौरान भीषण लॉकडाउन ने सिर्फ़ उत्पादन की व्यवस्था को ही नुकसान नहीं पहुँचाया, इसने युवाओं को शिक्षण-प्रशिक्षण से वंचित किया। इसने कार्यशैली में बदलाव पैदा किया और उत्पादन संरचना को भी काफ़ी हद तक बदल दिया। इस दौरान विभिन्न राज्य सरकारों ने श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ा दीं। वहीं तेज़ी से बढ़ रहे डिजिटल आधार पर उभरी कार्यसंचरनाओं में काम करने वाले मजदूरों को उनके मालिकों के हवाले कर दिया गया। श्रम

अवदानों के नाम पर पकौड़ा छानने का तर्क जब मोदी ने दिया था, तब यह साफ़ होने लगा था कि 'श्रमिक' होने की शब्दावली ही खत्म की जा रही है, लेकिन जब तक पूँजी है और उसमें मुनाफे की चाह है 'श्रमिक' शब्द बना रहेगा। एक लंबे समय बाद बजट में रोज़गार और प्रशिक्षण की शब्दावली का आना अर्थव्यवस्था की उस ठोस ज़मीन पर आना ही है, जहाँ से 'विकसित' होने की उड़ान भरी गई थी।

इस बजट में खेती से जुड़े श्रमिकों के बारे में कुछ खास बात नहीं है। किसानों के लिए पिछले बजटों की तरह आय दुगुनी करने का वादा फिलहाल दिखाई नहीं दिया। सब्सिडी के मद में खर्च अपने न्यूनतम स्तर पर दिखाई दे रहा है। आज भी खेती पर निर्भर श्रमिकों की संख्या में, जो नोटबंदी और कोरोना लॉकडाउन से बढ़ गई थी, उल्लेखनीय कमी नहीं आई है। बजट युवाओं की शिक्षा के ऋण की व्यवस्था करने की बात कर रहा है, लेकिन इस क्षेत्र में कोई गुणात्मक फर्क नहीं दिख रहा है। आईटीआई, पॉलिटेक्निक, बीफार्मा जैसी तकनीकी पढ़ाई के संस्थानों में निजी क्षेत्र की घुसपैठ और वहाँ नाम मात्र की पढ़ाई और प्रशिक्षण ने श्रम की स्थितियों को और भी बदतर बनाया है। दूसरी ओर उच्च शिक्षा में स्थिति न सिर्फ़ पहले से खराब हुई है, इसका स्तर दिनोंदिन गिरता जा रहा है। उत्पादन की व्यवस्था में एक ओर क्रोनी कैपिटलिज्म सर चढ़कर बोल रहा है, वहीं श्रमिक समुदाय को निरंतर अशिक्षा की ओर ठेला जा रहा है। यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह भारतीय अर्थव्यवस्था की भयावह त्रासदी है। इस बजट में इस त्रासदी से निकलने का कोई रास्ता नहीं दिख रहा है। 'विकसित भारत' का यदि यही रोडमैप है तब कहा जा सकता है, ऐसा भविष्य फिलहाल संभव नहीं दिख रहा है।

इस बजट के पीछे ठीक वही रणनीति है, जो पिछले वर्षों के बजट के पीछे रही है। रणनीति यह है कि अतिरिक्त राजकोषीय संसाधन जुटाने के लिए कोई प्रयास करो ही मत। गैर-कर राजस्व में बढ़ोतरी का (जिसका बड़ा हिस्सा भारतीय रिज़र्व बैंक के मुनाफ़ों से आ रहा है) का इस्तेमाल एक हद तक पूँजी खर्च में बढ़ोतरी के लिए करो, जिसमें बुनियादी ढाँचे पर खर्च में बढ़ोतरी भी शामिल है। अगर कुछ खास मदों में कल्याणकारी खर्च में बढ़ोतरी होती है, तो अन्य मदों में इसी खर्च में कटौतियाँ कर दो। और जो भी ज्वलंत समस्याएँ सामने खड़ी हों, उनका हल निकालने के लिए, बड़ी पूँजी के लिए बजटीय हस्तांतरणों का प्रावधान करो।

रोज़गार सृजन सरकार के एजेंडे में सबसे ऊपर था, हालाँकि सीतारमण ने मनरेगा का नाम नहीं लिया। उन्होंने साफ़ तौर पर माना कि यह एक ऐसी योजना थी, जिसने ग्रामीण क्षेत्रों में ग़रीबों को राहत पहुँचाई है। यह एक ऐसी योजना है, जिसे मोदी ने 2015 में कांग्रेस पार्टी की रोज़गार देने में विफलता के उदाहरण के रूप में खारिज कर दिया था।

पिछले वर्षों के दौरान मनरेगा के लिए 2024-25 का बजटीय आवंटन 86,000 करोड़ रुपये था, जो वास्तव में पिछले वित्तीय वर्ष 2023-24 में खर्च की गई राशि के बराबर था। संयोग से आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया है कि मनरेगा पर खर्च ग्रामीण संकट का सटीक संकेतक नहीं है, क्योंकि ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना पर खर्च करने की राज्य सरकारों की क्षमताएँ अलग-अलग हैं तथा विभिन्न राज्यों में न्यूनतम मज़दूरी भी अलग-अलग है। आंध्र प्रदेश को 15,000 करोड़ रुपये मिलेंगे, जिनमें से अधिकांश राशि अमरावती में राज्य की नई राजधानी बनाने के लिए खर्च होगी। इसके अलावा केंद्र सरकार बिहार और आंध्र प्रदेश की राज्य सरकारों की सहायता करेगी, अगर वे विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से बहुपक्षीय वित्तीय सहायता प्राप्त करना चाहें।

आयात होने वाली 50 वस्तुओं पर सीमा शुल्क में कटौती और छह महीने में टैरिफ की समीक्षा करने के वादे को कुछ अर्थशास्त्रियों ने भारतीय उद्योग को सुरक्षा के स्तर को कम करके एक तरह के 'सुधार के रास्ते' के रूप में देखा है। खाद्य सब्सिडी पर खर्च कम हो गया है, क्योंकि सरकार कम गेहूं और धान खरीद रही है, जबकि मुफ्त खाद्य योजना के अगले पाँच वर्षों तक जारी रहने की उम्मीद है। बजट में गरीब बेरोज़गारों के लिए कोई दूरगामी योजना नहीं दिखती। गरीब को मुफ्त अनाज देकर संतुष्ट करना इसी चीज़ को दर्शाता है। बजट का विश्लेषण करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक लिखते हैं, 'इस बजट की सबसे खास बात है, देश की जनता के सामने खड़ी भारी समस्याओं के प्रति इसकी घोर बेख़बरी।' फ्रांस के बोबोन राजाओं के संबंध में (जिनका 1789 की क्रांति में तख्तापलट कर दिया गया था) यह कहा जाता था कि 'वे कुछ भी सीखते नहीं थे और वे कुछ भी भूलते नहीं थे।' यही एनडीए सरकार के संबंध में भी सच है। इस सरकार ने जो बजट पेश किया है, वह ऐसी धारणा बनाता है कि अर्थव्यवस्था के मामले में ऐसा कुछ तो हुआ ही नहीं है, जिस पर तुरंत ध्यान दिए जाने की ज़रूरत हो। ढीठपने का यह प्रदर्शन हैरान करने वाला है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं।)